आखर हिंदी पत्रिका; e-ISSN-2583-0597 खंड 2/अंक 2/जून 2022
Received:03/02/2022; Published:24/06/2022

साक्षात्कार

सुधा अरोड़ा से डॉ.शकुंतला.पाटील की बातचीत - भाग-2

- डॉ.शकुंतला.पाटील

- **आपकी कहानियों की नारी प्रेम के संदर्भ में असफल रही है। इसका क्या कारण रहा है?**

प्रेम तो ज्यादातर असफल ही होता है। आप समाज में देखें तो सफल कम ही मिलेगा। मैंने ज्यादा प्रेम कहानियाँ लिखी नहीं है। वैसे देखें तो मैंने एक ही प्रेम कहानी लिखी है उधड़ा हुआ स्वेटर। मेरे लिए प्रेम से ज्यादा बहुत सारी दूसरी चीजें हैं। सामाजिक विषमताएँ है तो उन पर मैंने लिखा है। जैसे एक शेर है- 'और भी गम है जमाने में मोहब्बत के सिवा'। तो बहुत सारी दूसरी चीजें है जो आपको परेशान करती है।

- **'बुत जब बोलते है' कहानी की रचना प्रक्रिया के पीछे आपकी दृष्टि क्या रही है?**

दस साल पहले मैंने ये देखा था कि एक डॉक्टर दंपति का बेटा बहुत ही होनहार बहुत कलाकार और आर्ट लविंग, बहुत क्रिएटीव, गिटार बजानेवाला बच्चा था। उसको जबरदस्ती डॉक्टर बनाने की कोशिश में माता-पिता लगे हुए थे। तो उसने आत्महत्या कर ली और ये थीम बहुत तकलीफ दे रही थी और ये दिमाग में दबी हुई थी। लेकिन दस साल बाद मैं ने एक शादी अटेंड की किसी डाक्टर के बेटे की शादी थी। और वहाँ मैं ने देखा, एक गरीब बच्चे को जो पाँच सो रूपये के लिए ऐसे सर्दी के दिनों में बुत बना हुआ खड़ा है। पता नहीं वो कैसे कहानी अपने आप बन गई। देखिए दिमाग में जब कहानीकार की सृजनात्मक क्षमता होती है न वो बहुत चीजों को संजोकर रखती है। दिमाग के कोने-कोने में। और वे जब एकसूत्रबद्धता होती है। तब वे आकार लेती है। तो इस तरह की कई घटनाएँ वो उस एक शादी में जाने से जुड़ गई। बुत बने हुए लोगों की यह कहानी है। जो माँ है वो बुत बन गई है। वो बच्चा है गरीबी के कारण बुत बना है। तो समाज में किस तरह से परिस्थितियाँ लोगों को ऐसा बना देती है। थोड़ी सिम्बोलिक कहानी है प्रतिकात्मक।

- **आपकी कई कहानियों में विवाहेतर संबंध का उल्लेख हुआ है। क्या यह भारतीय परंपरा के खिलाफ नहीं है?**

ये किसी भी संप्रदाय के खिलाफ नहीं है। पूरे विश्व में होता रहा है। और इसका सीधा संबंध हमारे पितृसत्तात्मक समाज से है। जहाँ विवाहेतर संबंध को अनैतिक नहीं माना जाता पुरुषों के लिए। हमारे तो भगवान कृष्ण की सोलह हजार रानियाँ थी, राजा दशरथ की चार रानियाँ थी एक पटरानी और महारानी रही है। जो हमारा एक ट्रेडिशन है जिसमें पुरुषों के लिए ये सुविधा और छूट दी जाती है। ये भारतीय परंपरा के खिलाफ कैसे हुआ? ये तो भारतीय परंपरा को ही बनाता है। क्योंकि यहाँ ये होता रहा है और उनको खुली छूट दी जाती है। अगर विवाहेतर संबंध में भी दोष स्त्री को दिया जाता है पुरुषों को नहीं।

ये तो एक बहुत कॉमन समस्या है भारतीय समाज की। और इसका एक और पक्ष भी है कि आज महिलाओं की भी ऐसी जमात उठ खड़ी हुई है, जिनको विवाह से बाहर संबंध बनाने में परहेज नहीं होता है। तो उसके बारे में, उस पर मैं पूरा उपन्यास लिख रही हूँ। क्योंकि महिलाओं का एक और रूप भी है और उसको हर स्त्री की आजादी और बोल्डनेस के नाम से स्वीकार किया जाता है, जो ठीक नहीं है।

- **'राग देह मल्हार' कहानी की भुवनमोहिनी सच्चे अर्थों में नयी पीढ़ी का प्रतीक है। क्या आप इस बात से सहमत है?**

नहीं, वो नयी पीढ़ी का प्रतीक नहीं है। मैं सिर्फ ये बताना चाहती हूँ कि इस तरह की औरतें समाज में है। खतरनाक औरतें है और इनको पहचानना जाना चाहिए। हम उनको पहचान नहीं पा रहे है और हम उनको छूट दे देते हैं। ये समाज में कितनी गंदगी फैला रही है। कितना नुकसान कर रही है परिवारों का समाज के संतुलन को बिगाड़ रही है वो पता नहीं चल रहा है। ये नयी पीढ़ी का प्रतीक नहीं है ये औरतें। ये नई पीढ़ी में से निकली हुई है। पहले के समय में जिनको हम लांछित कहते थे, जिनको बुरा कहते थे, जिनको अनैतिक मानते थे आज समाज ने उनको स्वीकृति दे दी है। तो उस स्वीकृति से हमें ऐतराज है। और उस पर हम अपनी आपत्ति दर्ज करना चाहते हैं।

- **आजादी के बाद भारत की कुछ घटनाओं ने आपको बेहद व्यथित किया है? क्या उन घटनाओं को आपके रचना प्रक्रिया में उनको स्थान दिया है।**

बिलकुल दिया है। राजनीति के स्तर पर जैसे आजाद भारत के जो पहली एक बहुत बड़ीं घटनाएँ हुई थी, बाबरी मसीदी का ध्वंस तो बाबरी मसीद गिरने की वजह से जो दंगे फसाद हुए, पूरे भारत में हुए। मैं

तो बंबई में थी। बंबई भी मैंने देखा। जाहिर है उससे तो अलग नहीं रहा जा सकता था न। आप अपने आँखों के सामने देख रहे हैं। तो वो मैंने बड़ी कहानियाँ लिखी है- 'काला शुक्रवार' और 'जानकीनामा'। जैसे 'कांच के इधर-उधर' में पर्यावरण को जिस तरह नुकसान पहुँचाया जाता है। मतलब आपके काम की जो चीज है वो आप ले लेते है। मधुमक्खियाँ शहद जमा करती है तो शहद आपके काम आयेगा इसलिए वो आप निकाल लेते हैं। लेकिन मधुमक्खियों को फ्यूमिलेटर से मार देते हैं। क्योंकि उनका जो शहद था वो तो लिया आपने। तो ये इस तरह से बहुत हम लोग जागरूक नहीं है और हिंसा हमारे समाज में बहुत ज्यादा है। लोगों में ये नकारात्मक प्रवृत्तियाँ बहुत जल्दी बढ़ जाती है। उनको बहुत जल्दी हिंसक बनाया जा सकता है। उनमें सुधार जल्दी नहीं लाया जा सकता। तो ये सब चीजे जो होती है उससे बच के तो रह नहीं सकते। कहानियों में आप जो भी लिखते वो उसमें आएगा ही। जैसे आलोखों में मैंने अब एसीडोकेक्ट पे आलेख लिखा है। विक्षिप्त लड़कियों के आत्महत्या पर आलेख लिखा है। जो कुछ होता है समाज में उस पर कहानी लिखते है, आलेख लिखते है, कविता लिखते हैं। किसी भी जिस विधा में अपना हम आक्रोश निकाल सकते है। रचनाकार करता ही है ना, उसके पास और क्या साधन है।

- **आप कैसे निर्णय लेती है कि किसी घटना, विषय या पात्र को केवल कहानी में अभिव्यक्ति देनी है और उपन्यास में?**

शुरू के दो-तीन सालों को छोड़कर मैंने रूटीन बनाकर नियमित लेखन नहीं किया। जो कुछ भी लिखा गया, भीतरी खलबली और बेचैनी के तहत ही लिखा गया। जितना अब तक लिखा है, लगभग उतना ही अधूरा लिखा रखा है। कभी कोई रचना भीतर से विस्फोट के तहत शुरू तो हो जाती है, पर अधरस्ते लिखते हुए सांस फूलने लगती है और उस कहानी को पूरा करना असंभव-सा लगने लगता है। वैसी मारक सज़ा आप अपने को देना नहीं चाहते तो वह रचना अधूरी छूट जाती है।

हां, कुछ रचनाएं एक रौ में लिख ली जाती हैं। जो अपने प्रत्यक्ष अनुभव के दायरे में आती हैं, उन्हें लिखना अपेक्षाकृत आसान होता है। जैसे दंगों के दौरान लिखी 'काला शुक्रवार' या ताज़ा कहानी 'पीले पत्ते'- जो शुरू से आखिर तक एक संस्मरण ही है। यह भी है कि अक्सर कहानी का अंत मेरे दिमाग में पहले दर्ज़ होता है, शुरू का हिस्सा बाद में जुड़ता है। 'पीले पत्ते' कहानी का अंत अगर यथार्थ में उस तरह से घटित न हुए होता तो पार्क में मिली उस बुजुर्ग महिला पर कहानी लिखी ही नहीं जाती।

कई बार अलग-अलग समय में घटित हुए प्रसंग भी एकसाथ जुड़ कर किसी कथा की रचना करते हैं। शुक्रवार के जनवरी 2012 वार्षिकांक में मेरी जो नई कहानी 'कांच के इधर-इध'र आई है, उसमें भी कहानी का आखिरी हिस्सा हाल ही की घटना है, जबकि उसमें कामगार के बच्चों के मोबाइल क्रेश और मजदूर के साथ घटी दुर्घटना वाला प्रसंग ग्यारह साल पुराना है लेकिन मधुमक्खी के छत्ते टूटने की घटना अपने सामने इस तरह से न हुई होती तो दोनों घटनाएं आपस में जुड़ती नहीं और कहानी बनती नहीं।

- **'यहीं कहीं था घर' उपन्यास में घर की तलाश सही रूप में हो पायी है? उपन्यास में अभिव्यक्त विशाखा का विद्रोह क्या अंत में ठंड़ा पड़ जाता है?**

नहीं, घर-एक तो माँ का घर है। माँ के घर की पूरी कहानी है। दूसरा घर जो है शादी के बाद का घर है। असल में वो जो दूसरा घर है वो छोटी बहन का है। वो विशाखा की कहानी है। जो दो बहनें हैं सुजाता और विशाखा। ऐसा होता है बहुत सी विद्रोही लड़कियाँ जो अपने बचपन में, युवा होते समय बहुत विद्रोही किस्म की होती है वो भी बहुत शांत हो जाती है। क्योंकि उनको अपने वैवाहिक जीवन में ताल-मेल बिठाके चलना पडता है। समाज के पास कारण बहुत होते हैं लड़कियों को चुप कराने के। क्योंकि उनको अपने वैवाहिक जीवन में ताल-मेल बिठाके चलना पढ़ता है। और वो अपने माँ-बाप को दुःख नहीं देना चाहती है। इसलिए बताती भी नहीं। ऐसा होता है कि विद्रोही लड़कियाँ भी, उनका विद्रोह ठंडा पड़ जाता है। लेकिन इस विद्रोह को नहीं पर जरूरी है कि अपने आत्मसम्मान को बचाये रखना। सुजाता ने तो अपने माँ-बाप की मर्जी से शादी की और उसके बाद उसकी कहानी नहीं लिखी। लेकिन हम सोच सकते है कि उसने कैसे जिंदगी जी होगी। पर विशाखा ने अपनी मर्जी से शादी की पर उसके साथ भी क्या हुआ। लेकिन वह सफल नहीं हो पायी।

- **आपको समांतर कहानी आंदोलन की लेखिका के रूप में जाना जाता है। समांतर कहानी का मूल स्वरूप क्या है और समांतर कहानी से आपके जुड़ाव के कारण?**

समांतर कहानी आंदोलन से मेरा जुड़ाव इतना ही था कि मेरे पति जितेंद्र भाटिया इसके पुरोधा कमलेश्वर का दाहिना हाथ थे और पति की लीक पर पत्नी का चलना स्वाभाविक मान लिया जाता है, इसलिए लोगों ने मुझे ज़बरदस्ती समांतर के खेमे में ढकेल दिया, जबकि न मैं समांतर आंदोलन के साथ थी, न अकहानी के साथ, न सचेतन कहानी के साथ। समांतर कार्यक्रमों में भी मैं सिर्फ राडगीर और मांडू के

सम्मेलनों में बतौर जितेंद्र भाडया की पत्नी ही शामिल हुई थी। इसके अलावा कालीकट, छिंदवाड़ा, कच्छ के गांधीधाम कहीं भी मेरी उपस्थिति दर्ज नहीं हुई। मैंने अपने को कभी कहानी के आंदोलन के साथ खड़ा नहीं पाया। कमलेश्वर ने जो 'समान्तर' संकलन स्म्पादित किया था, उसमें भी मेरी कहानी नहीं थी।

- **आत्मकथा को क्या आप आत्मा का शोध मानती है? आपने आत्मकथा में जिसकी तलाश की है, क्या वे प्राप्त हुए है? क्या आत्मकथा एकांगिकता दोष लिए नहीं चलती? एक साहित्यकार होने के नाते आपके अनुसार साहित्य में इस विधा का क्या महत्व होना चाहिए।**

आत्मकथा तो मेरे विचार से तभी लिखी जानी चाहिए जब आपको ये लगे कि आपका जीवन बहुत सारी दूसरी महिलाओं के जीवन को उसका प्रतिनिधित्व करता रहा है। आपकी जो समस्याएँ है वो बहुत बड़े वर्ग की समस्याएँ है। ऐसी सच्ची आत्मकथा लिखी जानी चाहिए। किसी सपने को महिमामंडन करना आत्मकथा लिखना नहीं है। इस नज़रिए से मैं चंद्रकिरण सोनरिक्सा और मन्नु भंडारी की आत्मकथाएँ हैं। क्योंकि ये सच्ची आत्मकथाएँ है। आप किसी भी चीज़ को पढ़े तो उसके शब्दों से आपको पता चल जाता है कि सच कहाँजा रहा है या अपना महिमामंडन किया जा रहा है। मैंत्रेयी पुष्पा की जो आत्मकथा है, उसमें प्रकाशक ने लिखा हैं कि ये औपन्यासिक आत्मकथा है। औपन्यासिक आत्मकथा कोई विधा नहीं होती। आत्मकथा का मतलब आत्मकथा। आत्मकथा कोई उपन्यास नहीं है। आत्मकथा यानी संस्मरण। आत्मकथा और संस्मरण सच्चे होने चाहिए। उसमें उपन्यास में कल्पना का पुट रहता है। उपन्यास में आप एक चरित्र गढ़ते है तो औपन्यासिक आत्मकथा कौई विधा नहीं है। औपन्यासिक आत्मकथा तभी आप कह सकते हैं जब आत्मकथा में झूठ लिखा गया है, कल्पना से बुना गया है। तो उसको आप कह देते है, वो गलत चीज़ है।

वो तो अपने भीतर छुपे हुए दो पक्ष होते हैं। एक जो लिखता है, एक जो देखता है। एक जो दृष्टा है और एक जो सर्जक है। जो व्यक्ति देखता है वो हमेशा लिख नहीं पाता। दृष्टा और सर्जक के बीच में कश्मकश चलती रहती है। कई बार स्त्री जो झेलती है वो चाहती है कि वह लिखें लेकिन वो लिख नहीं पाती है। क्योंकि एक तकलीफ को झेलना और फिर उसको लिखना दुबारा उस तकलीफ से गुजरना है। और इन्हीं दो पक्षों का मैं ने लिखा है उसमें। मतलब मैं हमेशा ढूँढती रहती हूँ अपने लेखक पक्ष को जो बार-बार मेरे हाथों से छूट जाता है, बिखर जाता है। और ऐसा होता रहा है। कई बार हुआ कि ऐसे बहुत सी लेखिकाएँ है जो नियम बनाके जैसे आप जॉब पे जाती है ना दस से पाँच। वैसे कई लेखिकाएँ बहुत नियम से रोज लिखती है। पर मेरा उस तरह का लिखना नहीं है। मैं बहुत मानसिक दबाव में आकर ही लिखती हूँ। तो कभी-कभी छः-छः महीने गुजर जाते है कुछ भी लिखा नहीं जाता। पर अंदर ही एक हलचल बनी रहती है और जो हम

देखते रहते है वो अपने अंदर जमा होता रहता है। और फिर जब इकट्ठा हो जाता है तो अपने आप किसी ज्वालामुखी की तरह फूट निकलता है। ये दो हिस्से है, मैं खुद ही अपने लेखक को तलाशती रहती हूँ, जो हमेशा बीच-बीच में खो जाता है। वैसे ये तो सिर्फ आत्मकथांश है, मैं आत्मकथा पूरी लिख रही हूँ।

- **क्या आपने 'बवंडर' सिनेमा के बाद अन्य किसी सिनेमा के लिए पटकथा नहीं लिखी?**

मैंने एक-दो आर्ट फिल्म्स् के लिए पटकथा लिखी। पर मैंने ज्यादा इस ओर नहीं ध्यान दिया। क्योंकि मुझे वो संतुष्टि नहीं मिलती जो कहानी और आलेख लिखकर मिलती है। क्योंकि फिल्म माध्यम जो है निर्देशक का माध्यम है। लेखक का लिखा हुआ बहुत कुछ काट देते हैं, बदल देते हैं तो मजा नहीं आता। और कमर्शियल सिनेमा में मेरी कोई दिलचस्पी नहीं थी। इसलिए मैंने नहीं लिखा।

****